Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2395-0390**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 3.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - IX **No. - 1** **(Jan.-Mar.) 2023**

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	वेदकालीन शासनिक परिषद् 'विदथ' ***डॉ. दीपक कुमार***	01-04
➲	आजादी के अमृत काल का बहुआयामी बजट ***डॉ. नेहा सिंह***	05-06
➲	श्रृंगार और प्रकृति वर्णन के अद्वितीय कवि सेनापति ***डॉ. राजेश कुमार चौधरी***	07-11
➲	भारवि का मानवीय–दर्शन ***डॉ रजनी गोस्वामी***	12-16
➲	रणेन्द्र के उपन्यासों में आदिवासी जीवन–संघर्ष का आयाम ***शेष कुमार***	17-18
➲	दलित कहानियों में विचारधारा के साथ संवेदना का समावेश ***मुन्ना कुमार राम***	19-22
➲	संस्मरणकार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का योगदान ***वर्षा कुमारी***	23-25
➲	बाजार का यथार्थ और समकालीन हिंदी कविता ***डॉ. मोहित मिश्रा***	26-30

बाजार का यथार्थ और समकालीन हिंदी कविता

डॉ. मोहित मिश्रा*

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक का प्रारंभ, इस शताब्दी की महान घटनाओं में से एक रूस के समाजवादी ढाँचे के पतन से होता है। यह भी अजीब साम्य है कि अंतिम दशक के प्रारंभ में होने वाली इस घटना के साथ ही आर्थिक उदारीकरण, भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर भारतीय समाज में उदारवाद, उपभोक्तावाद, बाजारवाद ने अपने पैर फैलाये। बाजार जिसने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारतीय समाज के सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। इसको समकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रमुखता से स्थान दिया है। बाजार आज के विश्व का यथार्थ बन चुका है। कविता में बाजार के शामिल होने को लेकर ए. अरविंदाक्षन का कहना है, कि "आज की धन केंद्रित संस्कृति में या बाजार सामाजिक व्यवस्था में कविता को प्रमुख न मानना ही स्वाभाविक है।"[1] इसलिए कविता में बाजार के प्रभाव से मुंह मोड़ना संभव नहीं दिखता, जिससे कविता की रचना–प्रकिया को भी दो–दो हाथ तो करना ही होगा। यह सकारण है कि केदार जी की कविताओं में बाजार बार–बार आता है, क्योंकि वह मनुष्य के जीवन में हर पल उपस्थित रह रहा है। फिर कवि से कैसे छूटेगा! 'अपनी खबर' में भी वह है। यह और बात है कि यहां कविता और बाजार की टक्कर भी है–

जाता था बाजार
मोमबत्ती की रोशनी में
मैं लिखता रहा कविता
क्योंकि सारे हिंदुस्तान में
बिजली गुल थी
अब यह कैसे बताऊँ
लेकिन छिपाऊँ भी तो क्यों
कविता और बाजार की एक हलकी–सी भी टक्कर
रोमांचित करती है मुझे।

यह केदारनाथ सिंह की काव्य–कला का स्वरूप है जो सीधे हृदय में उतर जाता है। केदार सिंह कविता में निबंध लिखते हैं। कभी कविता को कविता के रूप में नहीं लिखा। ऐसा वे लोग करते हैं, जिन्हें अपनी कविता और कला पर भरोसा नहीं होता। केदार जी साफ–साफ कहते हैं–

भरने दो अपने शब्दों में
सारे शहरों की खाक–धूल
इस यात्रा में वापसी नहीं
बस चलते जाना है अनुकूल।

समाज में प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में वस्तुओं का उपभोग होता आया है। फर्क इतना है, कि पहले व्यक्ति अपनी जरूरत के अनुसार वस्तुएं खरीदता था, परंतु वर्तमान में प्रतिष्ठा, लोभ एवं बाजार द्वारा पैदा की गई कृतिम आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तुएं खरीदता है। उपभोक्ता संस्कृति ने मानव को वस्तु बना दिया है। इस संदर्भ में जगदीश्वर चतुर्वेदी का कहना है, कि "उपभोक्तावादी समाज सामाजिक भिन्नता पर टिका है। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न दिखने के लिए वस्तुओं का इस्तेमाल करता है। भिन्न सामाजिक हैसियत दर्शाने के लिए ऐसा करता है।"[2] व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थितियों से भी अधिक व्यय करने लगा है, जिसके कारण मानसिक, सामाजिक रूप से परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं। वर्तमान में ब्रांड के दबाव, विज्ञापन की भाषा, मीडिया की बदलती भूमिका एवं बाजार के प्रभाव से समाज प्रभावित हो रहा है, जिसके लिए सुधीश पचौरी कहते हैं, कि –"विज्ञापन एक ब्रांड व बाजार में पोजीशन करने की कला मात्र है, उसमें अधिकतम न सही तो न्यूनतम झूठ बोला ही जाता है।"[3] बाजारवादी दौर में समाज और मानवता को सुरक्षित करने में कवियों ने कविकर्म के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समकालीन कवियों ने उपभोक्तावादी समाज को

* आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, संपर्क सूत्र–7982349547

कविताओं के द्वारा मार्ग दिखाने का कार्य किया है। उन्होंने कविताओं में मानवीय आस्थाओं को बचाने का प्रयास किया है, जिसके लिए वे सांस्कृतिक, सामाजिक एवं बाजार के विरुद्ध खड़े नजर आते हैं। बाजार की चमक–दमक ने समाज को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास जारी रखा है। इसके लिए बाजार की ओर से रोचक भाषा, छूट और प्रलोभन देने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ा गया है। बाजार भारतीय समाज की बनावट को ध्यान में रखते हुए त्योहारों और पर्वों के समय छूट व डिस्काउंट जैसे शब्दों से अपनी ओर खींचता है, जिससे अनावश्यक वस्तुओं की बिक्री भी बढ़ जाती है। व्यक्ति बाजार के दिए गए लालच में फस जाता है, जिससे वह कई अनावश्यक चीजें खरिद लेता है। आज बाजार के लिए प्रत्येक वस्तु बिकाऊ माल हो गई है, जिसका उदाहरण इस कविता में देखने को मिलता है–

अगर तुम मालामाल हो
तो हर आदमी एक बिकाऊ माल है।
आज जब कि हर चीज का दाम सिर्फ बढ़ने की ओर है
आदमी की कीमत में भरी छूट का शोर है।

कविता प्रारम्भिक काल से ही यथार्थ के नजदीक रही है, समकालीन कविता में जीवन की समस्याओं को प्रमुखता के साथ स्थान दिया जाता है। समकालीन कविता के संबंध में अजय तिवारी का कहना है, कि "समकालीन कविता की सबसे बड़ी देन यह है, कि उसने बाह्य यथार्थ का तिरस्कार करके आत्मगत बोध को ही 'सत्य' मानने वाले भाववाद को अस्वीकार किया है। इसीलिए उसकी प्रेरणा के स्त्रोत अकविता–नई कविता की भाववादी प्रवृतियों में नहीं हैं।"[4] समकालीन कवि कविता में जीवन के अनेक रंगों को बहुत नजदीक से चित्रित करते हैं, जिसमें भूख, बेकारी एवं आक्रोश आदि प्रमुख हैं। कविता के विषयों में काफी विविधता उत्पन्न हो गयी है। इस संबंध में ए. अरविंदाक्षन लिखते है, कि "बाजार केंद्रित संस्कृति ने हमारी गतिशील संस्कृति को ध्वंसित किया है। हमारी गतिशील संस्कृति प्रथमतः मूल्यापेक्षी है। मनुष्य एवं मनुष्येतर जीवन और व्यवस्था को उसमें प्रमुख स्थान प्राप्त है।"[5] वर्तमान कवियों की कविता जीवन अनुभवों के नजदीक आयी है। जिसके चलते कविता ज्यादा प्रामाणिक रूप में व्यक्त होती है। समाज में मूल्यों का ह्रास होने के कारण आज आपसी संबंधों का ताना–बाना टूटता नजर आ रहा है। तालमेल ख़त्म हो रहा है जिससे समाज में असंतुलन कि स्थिति पैदा हो गयी है। बाजार के दबाव के लिए यह कहना गलत न होगा, कि "बाजार केंद्रित संस्कृति ने अपने विकल्प को सुस्थापित करने हेतु मनुष्यधर्मी दृष्टि के स्थान पर मनुष्य विरोधी दृष्टि को विकसित किया है, पर उसका बाह्य रूप मनुष्य विरोधी नहीं है। बाजार केंद्रित नई संस्कृति ने सिर्फ वाणिज्य के क्षेत्र को ही नहीं बल्कि शिक्षा, समाज–कल्याण, स्वास्थ्य और विज्ञान के क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। इन सभी क्षेत्रों के कार्यकलाप बाहरी शक्तियों के इशारे पर चल रहे हैं।"[6] आज व्यक्ति जिन परस्थितियों में जी रहा है उनका स्वाभाविक रूप कविता में देखने को मिलता है। अनीता की कविताओं में वैश्वीकरण को बहुत ही प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। आज बाजार हमारी नींद तक में शामिल हो चुका है। अब सपनों का बाजार नहीं बाजार में सपने है। कल्पना की जा सकती है कि बाजार ने व्यक्ति के संबंध और परिवार तक में दखल देना प्रारंभ कर दिया है। अनीता की कविता अपने पाठकों को सचेत करने का कार्य करती है। उनकी कविताएं आईने की तरह हैं। उन्होंने अपनी एक कविता 'इस्तेमाल' में सामंती और पूंजीवादी, दोनों समयों में स्त्री के दोहन को अपना कथ्य बनाकर प्रस्तुत किया है। उसकी प्रष्ठभूमि उस समय की है जब स्त्री चौखट से बाहर नहीं निकलती थी–

पहले स्त्री बाजार नहीं जाती थी
वह फैली हुई थी समूचे घर में
लेकिन अब बाजार स्त्री के कदमों में हैं
उसके केश सहलाता उतारता कपड़े
सामान कोई भी हो बेची जाती है हमेशा स्त्री।

गहरी अंतर्दृष्टि और कलात्मक संतुलन के साथ लिखी गई यह कविता इस विडंबनापूर्ण सच को उभारती है कि कैसे कभी परंपरा के नाम पर तो कभी मुक्ति के नाम पर स्त्री का इस्तेमाल किया जा रहा है। इसी प्रकार विमल कुमार की कविताओं में भी इशारा किया जाता है, जिस पर दृष्टि तो सभी की पड़ती है परंतु उसके अधिकारों के बारे में कोई आवाज नहीं उठाता, लेकिन विमल उस मूंगफली बेचकर जाते हुए व्यक्ति को देखकर 'अंतिम व्यक्ति' के बहाने पूरी व्यवस्था को प्रश्नांकित करते हैं और गठबंधन दौर की राजनीति पर असरदार टिप्पणी भी करते हैं। ऐसी कविताओं में वे एक राजनीतिक कवच के रूप में सामने

आते हैं, लेकिन वे महज राजनीतिक कवि नहीं है, उन्होंने समाज पर पड़ने वाले बाजार के प्रभाव को भी गहराई से चित्रित किया है। विमल कुमार घनघोर पतनशीलता और बाजारवाद का विरोध करते हुए कभी घबराते नजर नहीं आते। उनके यहाँ ऐसी कविताएं न के बराबर हैं जिनमें भाषिक मितव्ययिता न हो। वे संप्रेषणीयता का महत्व जानते हैं, इसलिए पाठकों को अनावश्यक प्रयोग में नहीं उलझाते। इस भ्रम में भी नहीं पड़ते कि श्रेष्ठ रचने के लिए कोई अन्य उपक्रम भी करना चाहिए–

मत डालो मुझ पर जंजीरें
चुप रहती हूं जरूर
पर धधकती है ज्वाला
जलता है मेरा शरीर
चेहरा पड़ गया है अब काला
तोड़ना है मुझे
अपने ही घर का
ताला !

इन कविताओं से गुजरते हुए यह कहना सही ही होगा कि विमल कुमार का यह तीसरा संग्रह 'पानी का दुखड़ा' उनके लगभग पच्चीस वर्षों से अधिक के काव्य जीवन में एक सार्थक पड़ाव की तरह है। इस तरह विजय कुमार की कविताओं में शहर और गाँव की समाप्त होती सीमाओं को प्रस्तुत किया जाता है। आज बाजार जो दरवाजे की घंटी बजाने पर भी आधे–अधूरे खुलते है, उनके पूरे खुलने की इस उम्मीद को महज कवि–कल्पना मान लेना ठीक नहीं होगा। यह महज कविता का सच नहीं है बल्कि उस टकराहट का सच है जो अंधेरे और उजाले के बीच हो रही है। जो फटी जेब और बाजार की विद्रूप हंसी के बीच हो रही है। कवि की यह उम्मीद इसी टकराहट की कोख से जन्मी है। एक बेहतर दुनिया और जीवन के लिए इस उम्मीद को पलकों पर बिठाने की जरूरत है। कुछ विकल्पों के खोज की जरूरत है। जिसको उनकी कविताओं में देखा जा सकता है–

सुबह मैंने देखा एक भिखारी को पुल पर
जिसके सपने उसके कपड़ों की तरह चिथड़े थे
भिखारी ने बताया इशारे से
रात भर एक काली औरत प्रसव वेदना में तड़पती रही थी
सुबह उसने सूरज को जन्म दिया है
एक उजली मुस्कराहट थी नवजात बच्चे के सी चेहरे पर
जाने क्यों
शहर के सारे दरवाजे खुल गए अपने आप।

बाजार ने आज हमारी सोच पर कुछ इस तरह कब्ज़ा कर रखा है कि हम अपने समस्त संबंधों का आकलन फायदे के लिए करते हैं। युवा पीढ़ी की कविता ने बाजार के इस क्रूर चेहरे को बखूबी पहचाना है। अशोक कुमार पाण्डेय की पंक्तियाँ हैं कि–

बुरे होंगे वे दिन
अगर रहना पड़ा सुविधाओं के जंगल में निपट अकेला
दोस्तों की शक्लें हो गईं बिल्कुल ग्रहकों सी।

हेमंत कुकरेती की कविताओं में बाजार को चित्रित किया गया है। उन्होंने बाजार की भयावहता को अपनी कविता में प्रस्तुत किया। हेमंत जीवन की समस्याओं को बखूबी समझते हुए अपनी कविताओं में उसका सजीव वर्णन करते हैं। बाजार के असली चेहरे को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं, कि –

बाजार को दूर से देखने पर भी लगता है डर
मेरा घर तो बाजार के इतने पास है
कि उजड़ी हुई दुकान नजर आती हैं।

वर्तमान जीवन के परिवर्तनों को बारीकी से समझने वाले कवि अरुण कमल ने अपनी कविताओं में बाजार से लड़ने के लिए आम आदमी को प्रेरित किया है। उनकी कविताएँ समकालीन बाजार के बदलाव और लुभावने फायदों में छिपी मनसा को उद्घाटित करने का प्रयास करती हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्ति को बाजार की इन बदलती प्रवृत्तियों से परिचित कराते हैं। इनका कविता संग्रह 'अपनी केवल धार' में

संकलित कविताएँ बाजार की संरचना को उजागर करने का कार्य करती हैं। अरुण कमल बाजार के विविध रूपों को सामने लाते हैं। उनकी कविताएँ संस्कृति, जीवन–मूल्य एवं मनुष्यता को बचाने का प्रयास करती हैं। आज विश्व बंधुत्व की बात उठाई जा रही है, परंतु विश्व ग्राम की धारणा को बाजार के प्रभाव से बचाने का प्रयास भी किया जा रहा है। ग्लोबल होने के साथ ही हमारे समाज से गाँव के स्वरूप में परिवर्तन दिखाई देने लगा, क्योंकि बाजार ने अपनी संरचना में गाँवों को जकड़ लिया है। बाजार और विश्वग्राम के इस प्रभाव से सचेत करने का कार्य सर्वप्रथम कवियों ने अपने कविताओं के माध्यम से किया। जैसा की इन पक्तियों में चित्रित हुआ है–

दुनिया एक गांव तो बने
लेकिन सारे गांव बाहर रहे उस दुनिया के

इस बाजारवादी मानसिकता के बीच युवा कविता प्रेम और घर परिवार की अहमियत को बचाने की कोशिश भी करती हैं। अष्टभुजा शुक्ल की कविता है–

चारों कोनों में
आग लगी है
भहर–भहर जल रहा है घर।

इन्हीं कि कुछ पंक्तियों में प्रेम का स्वरूप इस रूप में देखने को मिलता है–

साठ वर्ष में
संभव है
हम उठकर न दे सकें।
एक– दूसरे को पानी
डूब जाए तुम्हारा सूरज
हमारा चंद्रमा
फिर भी
फिर भी
मेरे भावुकता यथावत रहेगी तुम्हारे लिए।

समकालीन कविता का पूरा परिदृश्य देखा जाए तो लगता है कि आज की कविता पूर्णशक्ति के साथ इस प्रकार के दबावों का विरोध लगातार करती चली आ रहीं है। समकालीन कविता के संबंध में ए. अरविंदाक्षन का कहना है, कि कविता आज सिर्फ कविता नहीं है, आज कविता गंभीर चिंता है। वह बहुवचनात्मक है। कविता हमारी संलग्नता की अभिव्यक्ति है।"[7] जिस गति से हमारा सामाजिक परिदृश्य बदला है और जिस तेजी से बाजार, केंद्रीय मूल्य बना है, उसने हमारे समाज को बाह्य और आंतरिक दोनों स्तरों पर प्रभावित किया है। आज जनता की बुनियादी समस्याओं के प्रश्नों को हाशिए पर छोड़ दिया गया है। इसके स्थान पर जीवन में बाजार का दबदबा बढ़ता जा रहा है। स्वप्निल श्रीवास्तव की कविता 'मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए' में बाजार के द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों को चित्रित किया गया है। उन्होंने वर्तमान यथार्थ को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। वे इस बाजारवादी व्यवस्था में आम आदमी की दुर्दशा और विवशता को महसूस करते हुए उसकी छटपटाहट व बेचैनी को व्यक्त करते हैं।

घर से बाहर निकलो तो बचो
घर में रहो तो बचो
क्योंकि जो कुछ बचा हुआ है
उसे नष्ट करने की कोशिशें जारी हैं।

1980 के बाद हिंदी कविता के क्षेत्र में कोई आंदोलन नहीं चला। इस समय समाज के कमजोर और पिछड़े वर्ग को छोड़कर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वरूप बदल गया। बाजार ने सभी को अपने लाभ के लिए कार्य करने की राह पर चलने के लिए विवश कर दिया। इसके लिए कहा जा सकता है कि "इस समय उत्तर–पूंजीवाद, उपभोक्तावाद और बाजारवाद का एकछत्र राज है। सत्ता के प्रायः सभी घटक पूंजी के पक्षधर हो गए हैं और उसके हित–साधन में संलग्न हो गए हैं। विकास की दर के आँकड़े जब सगर्व प्रस्तुत किए जाते हैं, तो वंचितों को सर्वथा भुला दिया जाता है। आम आदमी का नाम तो लिया जाता है, लेकिन वास्तव में उसके लिए किया कुछ नहीं जाता।"[8] समकालीन कविता में युवा कवियों ने आम आदमी की

पीड़ा को स्वर देने का प्रयास किया है। उन्होंने समाजिक संरचना को तोड़ने के लिए कविता का सहारा लिया।

समाज के विकास के साथ ही कई परिवर्तन होते है, जिनका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। इन परिवर्तनों से कविता अछूती नहीं रही है। जिस प्रकार बाजार की दखल समाज और व्यक्ति के जीवन में बढ़ी है, वैसे ही कविता में भी इसका प्रभाव देखने को मिलता है। कविता का प्रभाव बहुत गहरा और सर्वव्यापी है, जिससे समाज में कई परिवर्तन निरंतर होते रहते हैं। कहा जा सकता है कि समकालीन कविता पर बाजार का गहरा प्रभाव निरंतर देखने को मिलता है। समकालीन युवा कवियों ने कविता में बीसवीं शताब्दी से ही बाजार को चित्रित किया है। कविता ने बाजारवाद की समस्याओं को समाज के सामने लाने का निरंतर प्रयास किया है। कवियों ने कविताओं में वर्तमान की परिस्थितियों का सजीव वर्णन किया है, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक मूल्यों का परिवर्तित स्वरूप देखने को मिलता है। कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से बजार की बढ़ती दखल के खतरों से हमें चेताने का कार्य किया है। बाजार समानता देने की बात करता तो है परंतु समानता देता नहीं है। बाजार अपने लाभ के लिए मनुष्य की मानसिकता का निर्माण करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. ए. अरविंदाक्षन, समकालीन कविता की भारतीयता, पृष्ठ सं–9
2. जगदीश्वर चतुर्वेदी, नंदी ग्राम मीडिया और भूमंडलीकरण, पृष्ठ सं–120
3. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिकता मीडिया विमर्श, पृष्ठ सं–38
4. अजय तिवारी, हिंदी कविता : आधी शताब्दी, पृष्ठ सं.–16
5. ए. अरविंदाक्षन, समकालीन कविता की भारतीयता, पृष्ठ सं–210
6. ए. अरविंदाक्षन, समकालीन कविता की भारतीयता, पृष्ठ सं–310
7. ए. अरविंदाक्षन, समकालीन कविता की भारतीयता, पृष्ठ सं–12
8. (सं.) नगेन्द्र, हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठा सं–654